Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल-चिकित्सा

जल-चिकित्सक लुई कूने की
अँगरेज़ी पुस्तक का
भावार्थ

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी
कृत

Sri Pratap Singh
Public Library
Srinagar.

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

नवीन संस्करण] १९१९ [मूल्य ।-)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Cat 34564
14/10/13

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल-चिकित्सा

जल-चिकित्सक लुई कूने की
अँगरेज़ी पुस्तक का
भावार्थ

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी
कृत

Sri Pratap Singh
Public Library
Srinagar.

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

नवीन संस्करण] १६१६ [मूल्य ।=)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.
Acc No 1025

Jal chikitsa.

by.

Pandit Mahavir Prasa

~~Trev~~ Trevedi

Indian Press

1919

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

613.207
D92J

डाक्तर लुई कूने ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल-चिकित्सा।

उपोद्घात।

इस जगत् में जितने जीव रहते हैं सबको किसी न किसी प्रकार का लोभ रहता है। निर्लोभी प्राणी शायद कोई बिरला ही होगा। सच्ची उदारता, सच्चे परोपकार और सच्ची देशहित-सम्बन्धी बातें बहुधा हम लोग सुनते हैं; परन्तु यदि विचार करके देखते हैं तो सब में स्वार्थ अथवा बड़ाई की अभिलाषा का थोड़ा बहुत अंश हम अवश्य ही पाते हैं। यह कोई निन्दा अथवा दोष की बात नहीं। परार्थ अथवा परमार्थ ही के लिए सब कुछ करना, स्वार्थ को बिलकुल ही भूल जाना, दुर्घट है। अतएव अपने लाभ की ओर ध्यान देते हुए जो औरों को भी लाभ पहुँचाते हैं वे सब प्रकार वन्दनीय और प्रशंसनीय हैं।

आज कल, नाना प्रकार के नये नये अस्त्रशस्त्र और यन्त्र आदि निकल रहे हैं। उनके बनानेवाले अपने नवीन आविष्कारों का 'पेटेंट' लेकर उन पर अपना अधिकार रक्षित रखते हैं। इससे बिना उनकी आज्ञा उनके नवीन यन्त्रादि को दूसरा नहीं बना सकता। इस प्रकार उनके निर्म्मोता स्वयं ही, सबसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधिक धनसम्बन्धी लाभ उठाते हैं। परन्तु उसके साथ ही उन उन नवीन यन्त्रों के उपयोग से सर्व-साधारण को भी वे लाभ पहुँचाते हैं। अतएव उनकी विद्या-बुद्धि के प्रभाव से देश का उपकार हुए बिना नहीं रहता।

किसी नवीन वस्तु के बनानेवाले को निर्म्माता कहते हैं। यदि वह बिलकुल ही नई है, वह पहले थी ही नहीं, तो उसके बनानेवाले को प्रकटकर्ता अथवा आविष्कर्ता कहते हैं। आविष्कर्ताओं में से बिरले ही उदार, उन्नताशय और परोपकारी होते हैं। ऐसों को अपने लाभ की ओर कम और सांसारिक मनुष्यों के लाभ की ओर अधिक ध्यान रहता है। परन्तु अधिक लोगों की लोकहित की सीमा बहुत ही संकुचित होती है; उनको अपने लाभ का सर्वोपरि ध्यान रहता है; वे अपने आविष्कारों को छिपाये सा रहते हैं; उनका पूरा पूरा वृत्तान्त औरों को नहीं जानने देते। 'पेटेंट' लेकर भी वे मन में डरा सा करते हैं कि कहीं कोई उनकी विद्या-बुद्धि की थाह न पा जाय; कहीं कोई उन्हीं का सा अथवा उससे मिलता जुलता यन्त्र न बना ले; कहीं कोई उनसे बढ़ न जाय; ऐसा होने से कहीं उनको पैसे की हानि न पहुँचे। ऐसी ही ऐसी शङ्का करके, तान्त्रिकों की तन्त्रक्रिया के समान, वे अपने आविष्कृत यन्त्रों के बनाने की युक्ति आदि का पूरा पूरा वृत्तान्त नहीं प्रकाशित होने देते। ये सदाशयता के लक्षण नहीं हैं।

परन्तु, आज, हम एक ऐसे आविष्कर्त्ता के विषय में यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेख लिख रहे हैं जो अपने लाभ का कम परन्तु सांसारिक मनुष्यों के लाभ का बहुत ही अधिक प्रयत्न कर रहा है। इस उदाराशय, इस परोपकार-मूर्त्ति, इस महात्मा का नाम लुई कूने है। पाठकों को इस नाम पर आक्षेप न करना चाहिए। नाम में गुणों का वास नहीं रहता है। सब जातियों और सब देशों में महात्मा, उदार-हृदय और परोपकारी पुरुष जन्म ले सकते हैं।

लुई कूने जरमनी के रहनेवाले हैं। उनका घर लेपज़िक नगर में है। उनका चित्र हम अपने वाचकों के देखने के लिए यहाँ प्रकाशित करते हैं। ये लड़कपन में महारोगी थे; परन्तु, इस समय, इनका सा नीरोग मनुष्य संसार में शायद ही और कोई हो। योरप और अमेरिका में जल-चिकित्सा, जिसे अँगरेज़ी में हाइड्रोपैथी (Hydropathy) कहते हैं, बहुत दिनों से प्रचलित है। परन्तु कूने साहब ने उस चिकित्सा को बहुत ही सहज करके उसे एक नया ही रूप दिया है। इस चिकित्सा के द्वारा मानव-जाति को जो लाभ पहुँच रहा है और जो पहुँचेगा, उसकी सीमा नहीं स्थिर की जा सकती। जो मनुष्य मृत्यु के निकट पहुँच जाते हैं वे भी इस चिकित्सा से अनन्त लाभ प्राप्त करते हैं और अकाल-मृत्यु से बच जाते हैं। चिकित्सा बहुत ही सीधी है। कूने साहब का मत है कि सब रोगों का आदि-कारण एक ही है; इसलिए सबकी ओषधि भी एक ही होनी चाहिए। इसको वे सप्रमाण सिद्ध करके बतलाते हैं और नाना प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रोगों से पीड़ित लोगों को एक ही ओषधि अर्थात् जल के प्रयोग से, वे आराम करते हैं। उनकी चिकित्सा के महा-लाभदायक होने का एक यही प्रमाण है कि पहले पहल उन्होंने, १० आक्टोबर १८८३ ईसवी को, लेपज़िक में, जल-चिकित्सा का कारख़ाना खोला। थोड़े ही दिनों में दूर दूर से लोग वहाँ चिकित्सा के लिए आने लगे और वह कारख़ाना इतना चला कि १८९२ में उसे बढ़ाना पड़ा। उससे भी काम नहीं चला। अतएव १९०१ में उसे और बढ़ाने की आवश्यकता हुई। इस कारख़ाने की अब एक प्रचण्ड इमारत हो गई है।

कूने साहब ने अपनी जल-चिकित्सा के विषय में जो पुस्तक जरमन-भाषा में लिखी है, उसकी आज तक ५० आवृत्तियाँ छप चुकी हैं। इस बात से भी अनुमान किया जा सकता है कि उनकी चिकित्सा कितनी लोक-मान्य हुई है। उनकी पुस्तक का अनुवाद संसार की प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध भाषाओं में हो गया है। फ़्रेंच, स्पैनिश, अँगरेज़ी, पोर्चुगीज़, रशियन, डच, इटैलियन, स्वीडिश, डैनिश नार्वेजियन, रोमानियन, हङ्गारियन, सर्वियन, ग्रीक, टर्किश, आरमीनियन, मलाया, तिलैगू, तामील और उर्दू में उनकी चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तक के अनुवाद विद्यमान हैं और दूसरी भाषाओं में होते जाते हैं।

हमने कूने साहब से, उनकी पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद करने के लिए, अनुमति माँगी। उन्होंने हमको सहर्ष अनुमति ही नहीं दी, किन्तु अपनी बहुमूल्य पुस्तक की एक प्रति लेप-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज़िक से उपहार-स्वरूप भेजी और पुस्तक में जितने चित्र हैं उनके 'ब्लाक' भी वहाँ से भेज देने की इच्छा उन्होंने प्रकट की । इन बातों से सिद्ध है कि वे पूरे महानुभाव हैं । उनको अपने लाभ का बहुत कम ख़याल है । वे लोभी नहीं हैं । अपनी चिकित्सा का प्रचार करना और उसके द्वारा सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाना ही उनका अभीष्ट जान पड़ता है । उनके उदार चरित से दूसरे आविष्कर्त्ताओं को उपदेश लेना चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२—चिकित्सक का कथन।

कूने साहब की चिकित्सा का पूरा पूरा वर्णन, इस लेख में नहीं किया जा सकता। इसलिए हम उसका संक्षिप्त वृत्तान्त लिख कर ही सन्तोष करना चाहते हैं। जिनको उनकी चिकित्सा का पूरा पूरा हाल जानना हो वे उनकी 'न्यू सायन्स आफ़ हीलिंग' नामक पुस्तक के अँगरेज़ी अनुवाद को पढ़ें। अपनी पुस्तक में उपोद्घात की भाँति जो कुछ कूने साहब ने लिखा है उसको हम, यहाँ पर, संक्षेप रूप में, उन्हीं के मुख से वर्णन कराते हैं।

"जब मैं २० वर्ष का हुआ तब मेरे शरीर के अवयवों ने अपना काम—जैसा चाहिए वैसा—करना बन्द कर दिया। मेरे फेफड़े और सिर में पीड़ा होने लगी। मैंने डाक्टरों की शरण ली; परन्तु उनसे मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। मुझे उन पर विश्वास भी न था। मेरी वृद्धा माता बहुत दिन से रोगी थी; वह मुझसे यही कहा करती थी कि मुझे डाक्टरों से होशियार रहना चाहिए। वह यह भी कहती थी कि उसके रोग का कारण डाक्टर ही थे। डाक्टरों ही की औषधि करते करते मेरे पिता भी मर गये थे। उनके आमाशय—मेदे—में फोड़ा हो गया था। मेरी बीमारी बढ़ती गई। इसी समय, अर्थात् १८६४ ईसवी में, मैंने स्वाभाविक जल-चिकित्सा का नाम सुना। इसलिए मैं जल-चिकित्सकों की सभा में जाने लगा और वहाँ उनके व्याख्यान सुनने लगा। वे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे बहुत ही मनोरञ्जक जान पड़े। उन चिकित्सकों में से एक की अनुमति से मैंने अपनी चिकित्सा भी की। उससे मुझे तत्काल ही कुछ लाभ हुआ। मेरे फेफड़े में जो पीड़ा होती थी, वह बन्द हो गई। १८६८ ईसवी में मेरा भाई भी बीमार हुआ—और बहुत बीमार हुआ। जब उसके जीने की आशा न रही तब वह थिओडर हान नामक एक स्वाभाविक जल-चिकित्सक के पास गया और उस की चिकित्सा से उसका रोग जड़ से जाता रहा। तब से मेरा विश्वास इस चिकित्सा में और भी बढ़ गया"।

"इधर इस चिकित्सा में मेरा विश्वास बढ़ता गया, उधर मेरे शरीर में रोग भी बढ़ता गया। अपने माता-पिता से रोग के बीज जो मैंने पाये थे वे प्रति दिन वृद्धि पाते गये। मेरी दशा बहुत ही शोचनीय हो गई। मैं जीवन से निराश हो चला। मेरा रोग अत्यन्त ही असह्य हो गया। मेरे आमाशय--मेदे--में मेरा पैतृक (मौरूसी) फोड़ा अन्त को निकल आया। मेरा फेफड़ा बिगड़ गया। मेरे सिर में सदा पीड़ा होने लगी। यद्यपि मैं उस समय मोटा ताज़ा देख पड़ता था, तथापि मैं दुःसह रोग और वेदनाओं की प्रत्यक्ष मूर्ति हो रहा था। इसी दशा में, और सब प्रकार की चिकित्सा और ओषधियों से किञ्चित् भी लाभ न प्राप्त करके, मैं स्वाभाविक जल-चिकित्सा का प्रयोग अपने शरीर पर करने लगा। उस समय यह चिकित्सा बड़ी कठिन थी; उसका वह रूप न था जो रूप उसे अब मैंने दिया है। परन्तु फिर भी वह मेरी स्वाभाविक चिकित्सा से कुछ कुछ मिलती थी। उससे इतना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लाभ हुआ कि मेरी पीड़ा कम हो गई, परन्तु मेरा रोग नहीं गया। मेरा मन घर में न लगता था, इसलिए मैं नगर के बाहर जाकर खुली हुई जगहों में घूमा करता था और प्रकृति की सुन्दरता को देख कर उससे अपने मलिन मन को बहलाया करता था। उसी समय मैं अपनी दशा पर और स्वाभाविक चिकित्सा के तथ्यों पर भी विचार करता था। ऐसा करते करते इस चिकित्सा का तत्त्व मेरे ध्यान में आने लगा। कुछ दिनों में मैंने रोगों का कारण जान लिया और उनके दूर करने का उपाय भी मुझे विदित हो गया। मैंने अपनी चिकित्सा के सिद्धान्त स्थिर कर लिये; और दो एक आवश्यक, परन्तु बहुत सीधेसादे यन्त्र, जो चाहिए थे, उनको भी मैंने बना लिया। इस प्रकार मैं अपने ही सिद्धान्तों के अनुसार अपनी चिकित्सा करने लगा। मुझे सफलता हुई। मेरा रोग दूर होने लगा। कुछ दिनों में मैं पूर्ण रीति से आरोग्य हो गया। इस समय मेरे हर्ष का पारावार न रहा। मैंने अपनी चिकित्सा के सिद्धान्त औरों को भी सिखलाये। उन्होंने भी उनकी परीक्षा ली और वे भी सफल-मनोरथ हुए। अब मुझे विश्वास हो गया कि मेरी चिकित्सा सच्ची है, उसमें धोखा होने का डर नहीं; उसका प्रयोग करने से लाभ होना ही चाहिए"।

"इस प्रकार, इस चिकित्सा पर जब मेरा विश्वास जम गया, तब मैं उसे सर्वसाधारण में प्रकट करने लगा। डाक्टरों से भी उस विषय में मैं बातचीत करने लगा। परन्तु फल उलटा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किसी ने मेरी बात न सुनी; सुनी भी तो उस पर किसी ने विश्वास न किया। सब लोग सुन सुन कर अचम्भा सा करने लगे; मैं पागल ठहराया जाने लगा। लोग मेरी ओर उँगली उठाने लगे। डाक्टर लोग बेपरवाही, घृणा और निरादर की दृष्टि से मुझे देखने लगे। उनके अविश्वास को हटाने के लिए मैंने उन्हें अपने यन्त्र, बिना कुछ लिये ही, दे दिये और अपनी चिकित्सा की परीक्षा करने के लिए मैंने बड़ी नम्रता से प्रार्थना की। परन्तु मेरी सुनता कौन है ? मेरे दिये हुए यन्त्र घर की किसी अन्धेरी कोठरी में फेंक दिये गये, जहाँ पर धूल और मकड़ियों के जालों से लिपटे हुए वे अपने दुर्भाग्य पर रोते रहे"।

"यह दशा देख कर मुझे खेद तो अवश्य हुआ; परन्तु मैंने धीरज नहीं छोड़ा। मुझे विदित हो गया कि मेरे तथा मेरे कुटुम्बी, मित्र और सम्बन्धियों के नीरोग हो जाने से ही सबको इस चिकित्सा पर विश्वास न आवेगा। सबको विश्वास दिलाने के लिए मुझे अनेक रोगियों को अच्छा करके यह सिद्ध कर देना चाहिए कि मेरी जल-चिकित्सा सच्ची है; और वह दूसरे प्रकार की चिकित्साओं से विशेष लाभदायिनी है। नाना प्रकार के रोगों से मनुष्यों को पीड़ित देख मेरा अन्तःकरण पिघल उठा। मैंने कहा, ये लोग अपना हित अनहित नहीं जानते; बिना परीक्षा किये ही ये मुझे मूर्ख ठहराते हैं। इनका इसमें अपराध भी विशेष नहीं है। किसी नवीन वस्तु को देख अथवा सुन कर पहले लोग उससे भागते हैं; उसे बुरा समझते हैं; हज़ार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रयत्न करने पर भी उस पर विश्वास नहीं करते । अतः मनुष्य जाति को लाभ पहुँचाने के लिए मुझे कष्ट उठाना होगा; हानि भी सहन करनी होगी; लोगों के निरादर का पात्र भी बनना होगा । इन सब बातों का विचार करके मैंने जल-चिकित्सा का एक कारख़ाना खोलना चाहा । परन्तु ऐसा करने से मुझे बड़ी हानि होने का डर था । मेरा निज का एक दूसरा कारख़ाना था । वह २४ वर्ष से बराबर चल रहा था । उससे मुझे बड़ा लाभ था । यदि मैं चिकित्सा-सम्बन्धी नया कारख़ाना खोलता तो मुझे अपने पहले कारख़ाने की देख भाल के लिए समय न मिलता । इस कारण उसकी उन्नति न होती । उन्नति की कौन कहे, उसकी अवनति होने लगती और मुझे व्यर्थ हानि उठानी पड़ती । परन्तु मेरे हृदय में बैठा हुआ कोई प्रेरणा कर रहा था । उसने बार बार उत्तेजित करके जलचिकित्सा का प्रचार करने के लिए मुझे बद्ध-परिकर किया । इसका फल यह हुआ कि १० आक्टोबर १८८३ को मैंने जल-चिकित्सा का कारख़ाना खोल दिया ।"

"कारख़ाना खोलने पर, कई वर्ष तक, बहुत ही कम लोग उसमें चिकित्सा कराने आये । यदि कोई आते भी तो केवल स्नान करने आते; औषधि कराने न आते । परन्तु क्रम क्रम से आनेवालों की संख्या बढ़ने लगी । पहले पहल दूर ही दूर के नगरों से मनुष्य आते थे; परन्तु पीछे से निकट के नगरों से भी आने लगे; और स्वयं लेपज़िक के रहनेवालों ने भी कृपा करना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आरम्भ किया। इसी बीच में मैंने "सायन्स आफ़ फ़ेसियल एक्सप्रेशन" अर्थात् "मुख-चर्य्या-विज्ञान" नामक एक विज्ञान के सिद्धान्त स्थिर किये। उसके द्वारा मैं मनुष्यों का मुख देख कर उनके वर्तमान और भावी रोगों का हाल जान लेने लगा। इस विषय की एक पुस्तक भी मैंने सब के जानने के लिए प्रकाशित की। इस प्रकार मेरे कारख़ाने और मेरी नवीन चिकित्सा का वृत्तान्त देश-देशान्तर तक पहुँच गया; हज़ारों रोगी मेरे यहाँ आने लगे; और कठिन से कठिन रोगों से मुक्त होकर हँसते हुए और मुझे धन्यवाद देते हुए अपने अपने घर लौट जाने लगे"।

"धीरे धीरे मेरा तजरिबा बढ़ता गया। मेरा रोग, जो असाध्य कहा जाता था, निर्मूल हो गया। अब यद्यपि मुझे बहुत काम करना पड़ता है, तथापि मुझे थकावट नहीं आती। आज तक मैंने ऐसे अनेक रोगियों को अच्छा किया है जो परलोक को जाने के लिए तैयारी कर चुके थे। यह सफलता विशेष करके मुझे नहाने की एक नई रीति के निकालने के कारण हुई है। इस रीति का नाम मैंने 'मेहनस्नान' रक्खा है। मैं विश्वास-पूर्वक, दृढ़ता-पूर्वक, शपथ-पूर्वक, कह सकता हूँ कि इसके द्वारा सब प्रकार के रोग जड़ से नाश हो जाते हैं। मैं सब प्रकार के रोगों को दूर करने का प्रण करता हूँ; परन्तु सब प्रकार के रोगियों को अच्छा करने का प्रण नहीं करता। क्योंकि शरीर में रोग ने यदि अपना घर कर लिया और उसे उसने बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही निर्बल कर डाला तो उसका दूर होना कठिन हो जाता है। परन्तु हां, ऐसी दशा में भी मेरी चिकित्सा से क्लेश बहुत कम हो जाता है, और यदि रोग निर्मूल न भी हुआ अथवा रोगी न भी बच सका तो, उससे और चिकित्साओं की अपेक्षा अधिक लाभ अवश्य ही होता है"।

"चिकित्सा की यह जो नई रीति मैंने निकाली है, वह मैंने अनेक परीक्षाओं के अनन्तर, अनेक काल पर्य्यन्त उसका मनन करके, निकाली है। इस समय मुझे लोग चाहे कुत्सित और अधम चिकित्सक कहें; चाहे मुझसे वे घृणा करें; चाहे मेरी वक्तृताओं को सुन कर वे मुझ पर पत्थर फेंकें; और चाहे वे मेरी जितनी निन्दा अथवा अवज्ञा करें; मैं सब सहन करने को प्रस्तुत हूँ। मैं उनके कटु-वाक्यों को चुपचाप सुनूँगा। मैं भली-भाँति जानता हूँ कि मनुष्य-जाति के कल्याण करनेवाले जितने बड़े बड़े महात्मा हुए हैं, उनको भी लोगों ने आरम्भ में बुरा कहा है; उनकी भी उन्होंने निन्दा की है।"

"जिस चिकित्सा को आज कल डाक्टर लोग करते हैं उसका नाम 'ऐलोपैथी' है। उसमें इतनी अधिक दवाइयाँ दी जाती हैं कि बीमार का शरीर विकार से भर जाता है। दवाइयों का बहुत ही बुरा फल होता है। उनसे रोग दब जाता है; परन्तु निर्मूल नहीं होता। फिर, समय पाकर, वह उठ खड़ा होता है। शरीर में एक प्रकार का विष उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण नीरोगता का समूल ही नाश हो जाता है। मेरी समझ में चिकित्सा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने की यह रीति मनुष्यों को नीरोग करने की अपेक्षा रोगी अधिक कर देती है। चिकित्सा करने की एक दूसरी रीति भी, आज कल प्रचलित है। उसका नाम 'होमिओपैथी' है। उसमें दवाइयों की मात्रा अत्यन्त ही थोड़ी रहती है; इतनी थोड़ी कि खानेवाले को यही नहीं जान पड़ता कि वह है अथवा नहीं। उससे कम हानि होती है। परन्तु इस चिकित्सा में, भोजन पान के विषय में, कोई नियत और स्पष्ट नियम नहीं है। यह इसमें बड़ा दोष है। मेरी अल्प-बुद्धि में तो यह आता है कि 'होमिओपैथिक' दवाइयों की थोड़ी से भी थोड़ी मात्रा हानि से ख़ाली नहीं है। इन दोनों प्रकार की चिकित्साओं के निर्दोष न होने ही के कारण हान, रौसी, श्रोथ इत्यादि सज्जनों ने स्वाभाविक जल-चिकित्सा की नीव डाली। इस प्राचीन जल-चिकित्सा में नाना प्रकार के स्नान और पिचकारी आदि का प्रयोग करना पड़ता है। इस आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं। मैं नम्रता-पूर्वक यह भी कह सकता हूँ कि इन सज्जनों ने रोगों का कारण भी ठीक ठीक नहीं ढूँढ़ पाया। ईश्वर की कृपा से मैंने इन सब न्यूनताओं को दूर कर दिया है। स्नान करने के आडम्बरों को भी मैंने कम कर दिया है; रोगों का कारण भी मैंने खोज लिया है, मुखचर्य्या से उनके वर्त्तमान अस्तित्व अथवा भावी आगमन को जान लेने की विद्या भी मैंने प्राप्त कर ली है। मैं एक अल्पज्ञ मनुष्य हूँ। यह सब मैंने अपनी विद्या और अपने बल से नहीं किया। मुझ में इतनी शक्ति कहाँ जो मैं यह कर सकूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस परम-ज्ञानी परमेश्वर की कृपा ही इसका कारण है । अतएव मेरे कथन को कोई गर्वोक्ति न समझे"।

यह कूने साहब का उपोद्‌घात है; यह उनकी भूमिका है। उनके कहने की रीति से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि जो कुछ उन्होंने कहा है उसमें बनावट बिलकुल नहीं। उन्होंने अपनी बीती याथा-तथ्य कह सुनाई है। उन्होंने अपनी अवज्ञा और अपमान की बात तक कह दी है; कुछ छिपाया नहीं। इसीसे जान पड़ता है कि वे सच्चे हैं; लोगों को ठग कर रुपया प्राप्त करने के लिए उन्होंने यह चिकित्सा नहीं चलाई। इसीसे उनके विषय में उनकी पुस्तक के पढ़नेवालों के हृदय में एक प्रकार की श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होती है। इस जगत् में श्रद्धा एक अपूर्व भाव है; उसके प्रभाव से मनुष्यों के बड़े बड़े काम सिद्ध होते हैं। इससे, यदि केवल श्रद्धा ही के बल से कूने साहब की चिकित्सा के द्वारा मनुष्यों को लाभ पहुँचे तो भी कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। इसके स्वयं हम और हमारे कई मित्र प्रमाण हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३—रोगों का कारण।

बहुत दिनों के तजरिबे और परीक्षा से कूने साहब ने यह सिद्धान्त निकाला है, कि नीरोग मनुष्य का डील डौल रोगी मनुष्य के डीलडौल से नहीं मिलता। जो मनुष्य रोग-रहित होते हैं, उनके शरीर का आकार एक और ही प्रकार का होता है। बहुधा लोग समझते हैं कि रोगी मनुष्य ही दुर्बल होते हैं दूसरे नहीं। यह भूल है। जो लोग अत्यन्त मोटे और पुष्ट देख पड़ते हैं, वे ही अधिक रोगी होते हैं। मोटा होना स्वयं ही रोग का लक्षण है। अनेक मनुष्यों को साधारण रीति पर कोई कष्ट नहीं होता; वे अपने काम काज प्रसन्नता-पूर्वक करते हैं; परन्तु, तिस पर भी, उनमें से कितने ही रोगी होते हैं। उनके शरीर में रोग का कारण विद्यमान रहता है। शरीर में रोग का बीज उत्पन्न होने और उसके बढ़ने से शरीर के आकार में अन्तर हो जाता है। ध्यान से देखने पर यह अन्तर स्पष्ट जान पड़ने लगता है और प्रत्येक रोगी के शरीर में पाया जाता है। यह अन्तर विशेष करके मुँह और गर्दन पर दिखाई देता है। मुँह और गर्दन के आकार के चिह्नों ही को देख कर कूने साहब ने "मुखचर्य्याविज्ञान" के सिद्धान्त निकाले हैं।

रोग के ही कारण मुँह और गर्दन का आकार बदल जाता है। ये दोनों अवयव पहले की अपेक्षा, अधिक भरे हुए दिखाई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देते हैं। पेट के नीचे और कमर के पीछे भी मोटापन आजाता है। तल पेट और कमर के पिछले भाग में तो मुँह और गरदन की अपेक्षा और भी अधिक पुष्टता आ जाती है, क्योंकि रोग की जड़ यहीं रहती है। यहीं उसकी वृद्धि होती है; और यहीं से रोग के बीज शरीर में फैलते हैं। मनुष्य के शरीर का मांस छोटे छोटे अनेक टुकड़ों में बँटा हुआ है। ये टुकड़े एक दूसरे से चिपके हुए हैं; और रबर के समान खिंच सकते हैं। रोगों के बीज इन मांस के टुकड़ों के बीच में पहुँच कर जब वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं, तब वे उस स्थान के मांस को फुला कर मोटा कर देते हैं। किसी संकुचित स्थान में, अपेक्षा से अधिक पदार्थ रख देने से, वह स्थान अवश्य कुछ खिँच जायगा और उसका आकार भी अवश्य कुछ बड़ा हो जायगा। यदि उसकी बनावट ऐसी है कि वह घट बढ़ सके तो, उसका आकार और भी अधिक बढ़ जायगा। अतएव रोग के बीज शरीर में इकट्ठा होने से शरीर फूल उठता है। यह परिवर्तन मुँह और गरदन पर अधिक स्पष्टता से देख पड़ता है। इसका कारण है, जो आगे चल कर हम बतलावेंगे। रोग के कारण चमड़े का रङ्ग भी बदल जाता है। वह कुछ काला हो जाता है।

सामने के पृष्ठ में हम एक मनुष्य के दो चित्र देते हैं। वह हृद्रोग और जलोदर से पीड़ित था।

जिस समय वह पहले पहल कूने साहब के पास गया, उस समय, उसका आकार क चित्र का ऐसा था। परन्तु ४ महीने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क ख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तक उनकी चिकित्सा करने पर उसका आकार वह नहीं रहा। वह ख चित्र के आकार का हो गया। उन दोनों चित्रों में जो अन्तर है वह स्पष्ट है। पहला चित्र यह कह रहा है कि उस मनुष्य के मुँह और गरदन में आवश्यकता से अधिक मुटाई है, वह मुटाई दूसरे चित्र में नहीं दिखाई देती। दूसरे चित्र के समय कूने साहब की चिकित्सा ने, उसके मोटेपन को बहुत कुछ साफ़ कर दिया था और साथ ही उसके रोग को भी प्रायः दूर कर दिया था। यह मुटाई क्या पदार्थ है ? वह एक ऐसी वस्तु है जो शरीर के लिए आवश्यक नहीं। वह एक अनावश्यक वस्तु है। वह एक वैदेशिक—बाहर की—वस्तु है। उसके न होने से शरीर में कोई हानि नहीं। उसका होना ही रोग का कारण है। इस विषय में यह शङ्का की जा सकती है कि जिसे हम अनावश्यक अथवा अनुपयोगी—अतएव व्यर्थ—वस्तु बतलाते हैं, वह शायद शरीर के किसी स्थानविशेष के लिए उपयोगी हो और वहाँ से, किसी प्रकार, हट कर मुँह, गरदन, अथवा पेट में गई हो। इस दशा में उसे उसके नियत स्थान को पहुँचा देना ही उचित होगा। उसे अनावश्यक नहीं कह सकते। इस शङ्का का समाधान सहज ही में किया जा सकता है। यह देखा जाता है कि जिसे हम अनावश्यक मुटाई कहते हैं, उसकी उत्पत्ति शरीर के एक ही ओर होती है; और वहाँ दूसरी ओर की अपेक्षा वह अधिक रहती है अर्थात् दाहिनी अथवा बाईं ओर—जिस करवट मनुष्य अधिक सोता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसी ओर यह अनुपयोगी मुटाई अधिकता से बढ़ती है। इससे सूचित होता है कि यह अनावश्यक वस्तु आकर्षण-शक्ति के नियमों के अनुसार नीचे खिँच जाती है। यदि वह शरीर का कोई भाग होती तो वह कदापि अपना स्थान न बदलती और नीचे की ओर न झुकती। अतएव पूर्वोक्त शङ्का व्यर्थ है। यह वैदेशिक वस्तु शरीर का कोई भाग नहीं। वह एक विकारमात्र है। इसलिए हम यह बिना किसी सन्देह और शङ्का के कह सकते हैं कि शरीर में इस विकृत वस्तु का, इस वैदेशिक वस्तु का, इस अनुपयोगी वस्तु का, इस अनावश्यक वस्तु का होना ही रोग है। यही सब रोगों का आदि-कारण है। इसी से भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। यदि किसी प्रकार, इस वैदेशिक वस्तु को हम शरीर से निकाल सकें और शरीर को अपने स्वाभाविक आकार में ला सकें तो हमें अपने शरीर को नीरोग हो गया समझना चाहिए।

शरीर में अनावश्यक वस्तुओं का प्रवेश दो मार्गों से होता है। एक नाक से दूसरे मुँह से। नाक और मुँह के, घ्राण और जिह्वा, दो पहरेवाले हैं। परन्तु वे विश्वसनीय नहीं। लोभ में आकर वे अपना काम उचित रीति पर नहीं करते। कभी कभी वे बड़ा ही भयङ्कर विश्वासघात करते हैं। चोर, चमार, व्यभिचारी, सभी को वे भीतर चले जाने देते हैं। घ्राण से तो कुछ कम विश्वासघातकता होती है; परन्तु जिह्वा बड़ी ही नमक-हराम है। अच्छे अच्छे स्वादिष्ट पदार्थों के रस लेने के लालच

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में आकर शरीर के हानि-लाभ को वह बिलकुल ही भूल जाती है। इस प्रकार अनुचित काम करते करते कुछ दिनों में, उसे भले बुरे का ज्ञान ही नहीं रहता। मांस, मदिरा, भङ्ग, अफ़ीम सभी को वह बिना रोक टोक के, शरीर के भीतर चले जाने देती है। इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। अपेक्षा से अधिक, तिस पर भी बुरे बुरे, पदार्थों के खाने से उन्हें पचाने के लिए आमाशय—मेदे—को आवश्यकता से अधिक शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है। परन्तु यह शक्ति का ख़र्च एक दो दिन के लिए थोड़ा ही होता है। वह प्रति दिन ही का काम हो जाता है। अतएव कुछ दिनों में आमाशय से अपना काम ठीक ठीक नहीं हो सकता। भोजन के न पचने से विकार बढ़ने लगता है और वही विकार अनावश्यक अथवा वैदेशिक वस्तु के आकार में प्रकट होकर रोग उत्पन्न करता है। यह विकार इकट्ठा होता जाता है। दस दस बारह बारह वर्ष तक बहुधा मनुष्यों को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता परन्तु बढ़ते बढ़ते जब वह रोग का रूप धारण करता है, तब मनुष्य वैद्य, हकीम अथवा डाक्टर साहब की शरण जाते हैं और उसके दूर करने की चेष्टा करते हैं। इस समय ऐसी चेष्टा व्यर्थ होती है; क्योंकि रोग दब चाहे जाय—और प्रायः दब जाता ही है—परन्तु निर्मूल नहीं होता। जब उसका कारण बना है तब वह निर्मूल हो कैसे सकता है?

मनुष्य का शरीर ईश्वर ने ऐसा बनाया है कि वह किसी अनावश्यक वस्तु को, उपाय भर, अपने भीतर नहीं रहने देता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह उसे निकालने का सदा प्रयत्न किया करता है। फेफड़े के द्वारा वायु के रूप में, वायु के द्वारा मल के रूप में और चमड़े के द्वारा पसीने के रूप में वह विकृत वस्तुओं को सदा बाहर फेंका करता है। नाक, मुँह, आँख और कान के द्वारा भी अनावश्यक वस्तुओं को बाहर निकालने में वह कोई कसर नहीं करता। हमारा शरीर हम पर बहुत दयालु है। यदि वह इतना दयालु न होता तो एकही दिन में हमें अपने बुरे आचरणों का बदला मिल जाता। हमको चाहिए कि हम अपने शरीर से इतना काम लेने की कभी इच्छा न करें जितना वह सहज ही में न कर सके। वित्त बाहर काम लेने से वह कुछ दिन में थक जाता है और विकृत वस्तुओं को बाहर नहीं निकाल सकता। इस दशा में वे विकृत पदार्थ अनावश्यक होकर शरीर के भीतर ही रह जाते हैं। जहाँ उनकी जड़ जमी, तहाँ वे बढ़ने लगते हैं, और मनुष्य को रोगी कर देते हैं। अनावश्यक, अतएव अनुपयोगी, पदार्थ पहले मेदे में इकट्ठा होते हैं। वहाँ से, फिर, वे शरीर के और और भागों में भी पहुँच जाते हैं। मुँह और नाक के द्वारा बाहर निकलने की इच्छा से वे ऊपर की ओर बढ़ते हैं और निकलने में असमर्थ होकर मुँह और गर्दन के आस पास रह जाते हैं। इसलिए वहाँ पर मोटापन आ जाता है।

अनावश्यक पदार्थ जब शरीर में फैल जाता है, तब आवश्यक और पुष्टि-दायक पदार्थों के रहने के लिए स्थान कम हो जाता है। शरीर के भीतरी अवयव छोटे पड़ जाते हैं। रुधिर का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिसरण—आवागमन—ठीक ठीक नहीं होता। इन कारणों से शरीर के स्वाभाविक कामों का ठीक ठीक होना बन्द हो जाता है। अनावश्यक पदार्थ ऐसे परमाणुओं का बना होता है कि वह सहज ही घुल सकता है; पृथक् पृथक् कणों में अलग हो सकता है; नये नये परमाणुओं से मिल कर एक हो सकता है; और योग्य कारण पाकर जोश खाने लगता है। जो पदार्थ भीतर ही भीतर चञ्चल हो उठते हैं, अर्थात् जोश खाने—उबलने—लगते हैं, उनको सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (खुर्दबीन) से देखने पर, उनमें महा छोटे छोटे अनन्त जन्तु देख पड़ते हैं। ये कभी कभी बड़े वेग से बढ़ते हैं और इनके बढ़ते ही कोई न कोई रोग अवश्य ही उत्पन्न हो जाता है।

जो पदार्थ भीतर ही भीतर, आप से आप, उबलने लगते हैं उनमें एक प्रकार की उष्णता आ जाती है। जितना ही जोश अधिक होता है उतनी ही उष्णता अधिक उत्पन्न हो जाती है। जोश खानेवाले पदार्थ के परमाणु आपस में एक दूसरे से टकराते हैं। उनका यह टकराना ही उष्णता उत्पन्न करता है। दो पदार्थों को रगड़ने से आग निकलने लगती है। यह सर्वव्यापी नियम है। यही नियम मनुष्य के शरीर के भीतर रहनेवाले पदार्थों से भी सम्बन्ध रखता है। जब अनावश्यक पदार्थ बढ़ जाते हैं; और ऋतुओं के परिवर्तन अथवा और किसी योग्य कारण से उनके परमाणु शरीर के भीतर पृथक् पृथक् हो जाते हैं; तब वे उबलने लगते हैं और उसके साथ ही शरीर में उष्णता उत्पन्न हो जाती है। अतएव यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहना चाहिए कि इन अनावश्यक पदार्थों का जोश खाना ही ज्वर है । जैसे उष्णता से बर्फ़ गल कर पानी हो जाता है । और पानी भाप होकर उड़ जाता है; और जैसे भाप बादल के रूप में होकर फिर पानी हो जाता है और अधिक सरदी पाने से वही पानी फिर भी बर्फ़ हो जाता है, वैसे ही शरीर के भीतर इकट्ठा हो जानेवाले अनुपयोगी पदार्थों का भी सरदी गरमी के कारण रूपान्तर हुआ करता है । इन पदार्थों को भी युक्ति से, पानी को भाप सा करके, शरीर से उड़ा सकते हैं; और उड़ा कर शरीर को रोग-रहित कर सकते हैं । जिस युक्ति से इन पदार्थों को शरीर से निकालते हैं वही युक्ति इस जल-चिकित्सा का आधार है ।

अनुपयोगी पदार्थ, मनुष्य के शरीर के भीतर विशेष करके तलपेट—पेड़ू—में इकट्ठा होते हैं । वहीं उनमें उबाल आरम्भ होता है । जब वे उबलने लगते हैं तब शरीर उनको बाहर निकालना चाहता है अतएव संग्रहणी हो जाती है; दस्त आने लगते हैं । इस प्रकार जो वे अनुपयोगी पदार्थ निकल गये तो शरीर स्वच्छ और हलका होगया । परन्तु यदि कोष्ठ-बद्ध इत्यादि कारणों से वे इस प्रकार न निकल सके तो जोश खाते हुए वे ऊपर की ओर चलते हैं; क्योंकि शरीर में ऊपर और नीचे, दो ही ओर वे जा सकते हैं । भरी हुई बोतल का आगे के पेज पर एक चित्र है । उसे देखिए ।

इस बोतल की पेंदी में तो छेद हुई नहीं जो वहाँ से कोई पदार्थ नीचे निकल सके । इसीलिए उसमें जो कुछ भरा है उसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विकृत भाग नीचे जम कर, हिलने से, ऋतु-परिवर्तन से, अथवा और किसी कारण-विशेष से, अपने कणों को पृथक् पृथक् कर

देता है। ऐसा होने से वे कण-परमाणु—उबलने लगते हैं और मुँह की ओर दौड़ते हैं। बोतल ही का ऐसा हाल मनुष्य के शरीर का है। अर्थात् जब शौच साफ़ नहीं होता; पेशाब अच्छी तरह नहीं निकलता; रोमकूप रुँध जाते हैं; और श्वासोच्छ्वास निर्बल हो जाता है, तब विकृत पदार्थ शरीर के बाहर नहीं निकल पाते। अतएव ऋतु-परिवर्तन होने और क्रोध, शोक इत्यादि मानसिक विकारों का धका लगने से वे पदार्थ तलपेट में तरल हो उठते हैं और ऊपर की ओर दौड़ने लगते हैं। ऊपर पहुँचते ही सिर में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। इन पदार्थों के कण परस्पर टकराते हैं और चमड़े पर भी रगड़ खाते हैं। इसी लिए शरीर गरम हो उठता है। इसी गरम हो उठने को सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोग ज्वर आना कहते हैं। ज्वर में मनुष्य के अंगों का व्यास अधिक हो जाता है। शरीर कुछ फूल उठता है। इसका यह कारण है कि शरीर का चमड़ा रबर के समान खिँच सकता है। जब विकृत पदार्थ चमड़े से टकरा कर बाहर निकलने का यत्न करता है, तब वह, जहाँ तक सम्भव है, खिँच जाता है। जब वह अधिक नहीं खिंच सकता तब वे पदार्थ वहीं रह जाते हैं और रगड़ खाया करते हैं। इस अवस्था में शरीर उष्णा भी अधिक हो जाता है और भय भी बहुत बढ़ जाता है।

बोतल में विकृत पदार्थों के लिए रुकावट कम रहती है; शरीर में वह बात नहीं। शरीर का प्रत्येक अवयव उन्हें रोकता है। इसीलिए जहाँ वे पदार्थ पहुँचते हैं वहीं वे रोके जाते हैं; वहीं धक्के मुक्के की आवश्यकता होती है। इसी लड़ झगड़ के कारण उष्णता अधिक हो उठती है। जिस अवयव पर इन विकारी वस्तुओं का बल अधिक पड़ता है उन्हीं में रोग उत्पन्न हो जाता है; कभी कभी वे अवयव बिगड़ तक जाते हैं। यदि इन वस्तुओं का बल आमाशय पर पड़ा तो आमाशय रोगी हो जाता है; यदि हृदय पर पड़ा तो हृदय रोगी हो जाता है; यदि फेफड़े पर पड़ा तो फेफड़ा रोगी हो जाता है। अर्थात् कुष्ठ, गठिया, हृद्रोग, बवासीर, भगन्दर, गण्डमाला इत्यादि, तथा सब प्रकार के ज्वर इन्हीं विकारी वस्तुओं के द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं।

जो पदार्थ उबलने लगते हैं उनमें छोटे छोटे जन्तु—कृमि—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आपही से आप उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर में विकृत वस्तुओं के उबलने से भी सहस्रशः जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं और जब तक विकारी पदार्थ दूर नहीं कर दिये जाते तब तक उनके उत्पन्न होने का सदा डर बना रहता है। जो लोग छुआछूत के द्वारा इन जन्तुओं की उत्पत्ति मानते हैं वे भूलते हैं। शरीर में यदि विकृत पदार्थ न हों तो छुआछूत से इन जन्तुओं की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इन जन्तुओं का उत्पन्न होना बहुत बुरा है। उनके रहते अनेक रोग होने की संभावना रहती है। अतएव उनको समूल नाश कर देना ही मनुष्य के नीरोग होने का एक मात्र उपाय है। ओषधियों के द्वारा उनको मार डालने से कदापि नीरोगता नहीं प्राप्त हो सकती; क्योंकि उन जन्तुओं की उत्पत्ति का कारण तो नाश पाता ही नहीं। विकृत पदार्थों से ये कृमि उत्पन्न होते हैं; अतएव उन पदार्थों का नाश करना चाहिए; न कि स्वयं कृमियों का। जिस कोठरी में कूड़ा भरा हुआ है उसमें कीड़े अवश्य ही उत्पन्न होंगे; उनके मारने से कोठरी साफ़ नहीं हो सकती, क्योंकि एक बार उनको मारने से वे फिर फिर उत्पन्न होते रहेंगे। अतएव उस कोठरी को भली भाँति साफ़ करने के लिए उसके भीतर इकट्ठा हुआ कूड़ा बाहर निकाल फेंकना चाहिए। कीड़ों के समूल नाश करने का यही एक मात्र उपाय है।

जितने प्रकार के रोग हैं सब विकृत वस्तुओं के शरीर में इकट्ठा हो जाने ही से होते हैं, यहाँ तक कि उपदंश और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूत्राघात आदि रोगों का भी यही कारण है । परीक्षा से जाना गया है कि रोगी स्त्रियों के संसर्ग से किसी को रोग हो जाता है और किसी को नहीं होता । इसका यह कारण है कि जिसके शरीर में इतना अधिक विकार इकट्ठा है जो बाहरी संसर्ग से कुपित हो उठे, उसी के शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है । जिसके शरीर में विकार की मात्रा कम होती है, अथवा होती ही नहीं, उसे उपदंश और मूत्राघात आदि रोग भी संसर्ग से नहीं होते ।

इस प्रतिपादन से यह सिद्ध हुआ कि सब रोगों का एकही कारण है । अतएव सब रोगों को दूर करने का प्रकार भी एकही होना चाहिए । एकही प्रणाली से, एकही औषधि से, सब रोग निर्मूल होने चाहिएँ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४—चिकित्सा।

जब रोग का कारण ज्ञात हो गया तब उसकी औषधि भी सहज ही में की जा सकती है। कल्पना कीजिए कि किसी के ज्वर चढ़ा है। इस ज्वर को शान्त करने के लिए, रोमकूपों के मुँह को खोल देना चाहिए। ऐसा करने से विकारवान् पदार्थ, जो चमड़े से रगड़ खा कर उष्णता बढ़ा रहे हैं, पसीने के रूप में बाहर निकल आवेंगे। अतएव कम होते होते उष्णता शीघ्र ही शान्त हो जावेगी। पसीना आते ही ज्वर शान्त हो जाता है, यह हम सदैव देखते हैं। परन्तु सब लोग यह नहीं जानते कि क्यों ऐसा होता है! ऐसा होने, अर्थात् पसीना आने पर ज्वर दूर होजाने का—यह कारण है कि ज्वर के उत्पन्न करने वाले बुरे परमाणु शरीर के बाहर आ जाते हैं। इसी से शरीर की बढ़ी हुई गर्मी कम हो जाती है और शरीर हलका हो जाता है। पसीना उत्पन्न करने से ज्वर अवश्य शान्त हो जाता है; परन्तु रोग का बीज अर्थात् विकारवान् पदार्थ शरीर में बने ही रहते हैं। अतएव जब तक वे न निकाल बाहर किये जावें तब तक फिर फिर ज्वर आने की सम्भावना बनी ही रहती है। ज्वर के सिवा और और रोगों को दूर करने के लिए भी शरीर के भीतर इकट्ठा होने वाले विकृत पदार्थों को निकाल देना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसके लिए कूने साहब ने कई प्रकार के स्नानों की विधि लिखी है। उसमें से तीन मुख्य हैं—

(१) बाष्प-स्नान ।

(२) उदर-स्नान ।

(३) मेहन-स्नान ।

इन तीनों प्रकार के स्नानों की विधि, हम यहाँ पर, संक्षेप से लिखते हैं।

बाष्प-स्नान ।

इसके लिए बेंत से बुनी हुई एक व्यञ्च, अथवा मूँज के बान या सुतली से दूर दूर बुनी हुई एक चारपाई और तीन बरतन, जिनमें कोई दो दो तीन तीन सेर पानी आ सके, दरकार होते हैं। व्यञ्च अथवा चारपाई पर मनुष्य को पहले चित लेट जाना होता है। उस समय शरीर पर कोई कपड़ा न रखना चाहिए। कूने साहब ने इस प्रकार के स्नान के लिए लकड़ी की एक व्यञ्च बनाई है। इच्छा करने से वह लपेट कर रख दी जा सकती है। और फिर फैला भी दी जा सकती है। हम एक चित्र नीचे देते हैं जिसको देखने से विदित होगा कि वह व्यञ्च कैसी है, उस पर मनुष्य किस प्रकार लेटता है, और गरम पानी से भरे हुए बरतन कहां रक्खे जाते हैं।

स्नान के लिए पहले तीनों बरतनों को चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिए। जब पानी खौलने लगे, और उससे भाप निकलने लगे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

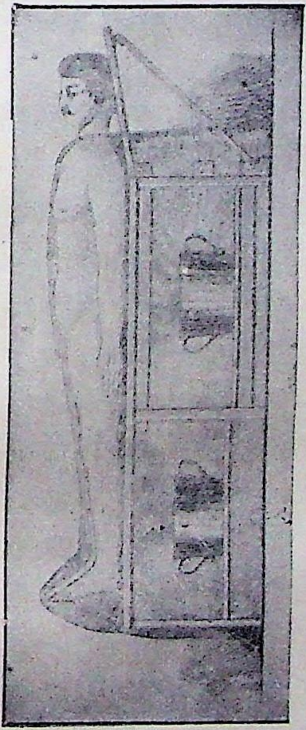

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तब मनुष्य को कपड़े उतार कर व्यञ्च अथवा चारपाई पर कम्मल, रजाई, दुलाई, शाल, या दोहर ओढ़ कर लेटजाना चाहिए। ओढ़ना इस प्रकार चाहिए जिसमें कपड़े के किनारे नीचे पृथ्वी तक लटकते रहें; अर्थात् कहीं खुला न रहे जहाँ से भाप बाहर निकल जाय। सिर भी पहले ढक लेना चाहिए। यह हो चुकने पर, कपड़े को धीरे से उठा कर, एक मनुष्य को खौलते हुए पानी का एक बरतन लेटे हुए मनुष्य की पीठ के नीचे और दूसरा पैरों के नीचे रख देना चाहिए। बरतनों पर ढकने अवश्य होने चाहिएँ और इच्छानुसार कम अथवा अधिक उष्णता करने के लिए उनको कम अथवा अधिक खोल देना चाहिए। कोई दस मिनट हो जाने पर भाप कम होने लगेगी। तब चूल्हे पर चढ़ा हुआ तीसरा बरतन उठा कर पीठ के नीचे रख देना चाहिए और पहले बरतन को उठा कर फिर आग पर चढ़ा देना चाहिए। जब भाप फिर उससे अच्छी भाँति निकलने लगे तब पैरों के नीचे वाला बरतन भी बदल देना चाहिए। परन्तु बहुधा पैरों के नीचे के बरतन को बदलना नहीं पड़ता। कोई दस पन्द्रह मिनट के अनन्तर मनुष्य को पेट के बल लेट जाना चाहिए, जिसमें पेट, पेड़ू और छाती पर खूब भाप लगे। यदि अब तक पसीना न निकला होगा तो अब अवश्य निकलेगा और पैर तथा सिर दोनों से एकही साथ, निकलने लगेगा। जिनको पसीना शीघ्र नहीं आता उनको सिर ढका रखना चाहिए, परन्तु जिनको शीघ्र आता है उनके लिए सिर ढकना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोई विशेष आवश्यक बात नहीं है । तथापि पहले थोड़ी देर के लिए उसे अवश्य ढक लेना चाहिए ।

पसीने को पन्द्रह मिनट से लेकर आध घंटे तक निकलने देना चाहिए । पसीना निकल आने पर बरतनों का बदलना अथवा न बदलना मनुष्य की इच्छा पर अवलम्बित है । शरीर के जिन भागों में विकारवान् पदार्थ अधिक इकट्ठा रहते हैं, उन भागों में देर से पसीना निकलता है । ऐसे भागों पर भाप का अधिक प्रयोग करना चाहिए और जहाँ तक उष्ण भाप सहन हो सके, आने देना चाहिए ।

जो मनुष्य बहुत निर्बल हैं अथवा जो बहुत अधिक बीमार हैं, उनको बाष्प-स्नान न करना चाहिए । उनके लिए उदर-स्नान और मेहन-स्नान ही बस होंगे । जिन मनुष्यों को स्वाभाविक रीति पर अधिक चलने फिरने या परिश्रम करने से, पसीना आ जाता है उनके लिए बाष्प-स्नान की उतनी आवश्यकता नहीं है । वे कभी ऐसे स्नान न करें तो कोई हानि नहीं । एक अठवारे में दो बार से अधिक बाष्प-स्नान न करना चाहिए ।

बाष्प-स्नान के लिए यदि किसी को पूर्वोक्त प्रकार की व्यञ्च या चारपाई, समय पर, न मिल सके तो बेंत से बुनी हुई कुरसी से उसका काम निकल जायगा । कुरसी पर बैठ कर नीचे गरम पानी का बरतन रख देना चाहिए और कुरसी समेत शरीर को कपड़े से ढक कर बैठना चाहिए ।

बाष्प-स्नान के अनन्तर ठंढे पानी में उदर-स्नान अवश्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करना चाहिए। उदर-स्नान के पहले अथवा पीछे मनुष्य को चाहिए कि वह अपना सारा शरीर भीगे हुए अँगोछे या तौलिया से झट पट पोंछ डाले, जिसमें उदर के सिवा शरीर के सब अवयव ठंढे हो जावें। ज्वर चढ़े हुए मनुष्य के लिए भी बाष्प-स्नान बहुत लाभदायक है। उससे शीघ्र ही ज्वर उतर जाता है; परन्तु उदर-स्नान करना न भूलना चाहिए। उदर-स्नान न करने से ज्वर बहुधा नहीं उतरता और तङ्ग होना पड़ता है। गत वर्ष, एक बार, ज्वर में, बाष्प-स्नान करके हम उदर-स्नान करना भूल गये; अतएव हमको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। ऐसी दशा में, बाष्प-स्नान करके ठंढे पानी में उदर-स्नान करने से डरना न चाहिए। उससे कोई हानि नहीं होती; लाभ ही होता है। गरम किये हुए लोहे को पानी में बुझा कर जैसे उसे उसके पूर्व-रूप को पहुँचाते हैं, वैसे ही बाष्प-स्नान के अनन्तर ठंडे पानी से शरीर को शीतल करने से वह अपने पूर्वरूप में आजाता है। इससे वह नीरोग और अधिक बलवान् हो जाता है।

बाष्प-स्नान के पीछे उदर-स्नान करके, सशक्त मनुष्य को बाहर स्वच्छ हवा में घूमने जाना चाहिए, जिसमें परिश्रम से शरीर गरमा उठे और कुछ पसीना भी निकले। परन्तु जो सशक्त नहीं हैं, अथवा जो अधिक बीमार हैं, और बाहर नहीं जा सकते, उनको किसी कमरे में कपड़े ओढ़ कर थोड़ी देर लेट कर शरीर को गरम कर लेना चाहिए। ऐसा करना बहुत ही आवश्यक है; इसलिए, इसमें भूल न करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु स्मरण रहे कि बीमार और बहुत अशक्त मनुष्यों को बाष्प-स्नान करना ही अनावश्यक है ।

उदर-स्नान ।

इस स्नान के लिए ८४˚ ६८˚ डिगरी तक के ठंडे पानी की आवश्यकता होती है । परन्तु पानी की शीतलता मापने की कोई आवश्यकता नहीं और न उसे किसी कृत्रिम रीति से ठंढा करने का यत्न ही करना चाहिए । स्वाभाविक रीति पर जहाँ जितना ठंढा पानी मिले वहाँ उसे ही काम में लाना चाहिए । उदर-स्नान के लिए एक 'टब' या एक ऐसे बरतन की आवश्यकता होती है जिस में मनुष्य बैठ सके । 'टब' में इतना पानी भर देना चाहिए जितने से नाभि के नीचे का भाग और जाँघें डूबी रहें । नाभि के ऊपर का भाग और पैर पानी के बाहर रहें । नीचे के चित्र को देखने से वह समझ में आ जावेगा कि इस स्नान के लिए मनुष्य को किस प्रकार 'टब' में बैठना चाहिए ।

इस चित्र में पैरों को रखने के लिए एक छोटी सी चौकी रक्खी है; परन्तु उसके न रखने से भी काम चल सकता है । चौकी न होने से पैरों को मनुष्य नीचे लटका सकता है; अथवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यदि 'टब' बड़ा हुआ तो उसके दोनों किनारों पर उन्हें रख सकता है।

ठंढे पानी से भरे हुए 'टब' में बैठ कर मनुष्य को गाढ़े का एक छोटा सा अँगोछा अथवा एक मोटी तौलिया लेकर उसे पानी में डुबा कर नाभि के नीचे का भाग—तलपेट, पेड़ू, जाँघों की जड़ इत्यादि—और कमर का पिछला भाग भी शीघ्रता के साथ, रगड़ना चाहिए। रगड़ने के समय हाथ बन्द कर देना अच्छा नहीं। पहले पहल ५ मिनट से लेकर १० मिनट तक उदर-स्नान करे;—फिर उसे क्रम क्रम से बढ़ा दे। अभ्यास बढ़ जाने पर आध घंटे से लेकर पूरा एक घंटे तक यह स्नान किया जाता है। जो लोग बहुत निर्बल हैं, अथवा बीमार हैं, वे दोही चार मिनट उदर-स्नान करें। इस प्रकार के स्नान में पैर और शरीर का ऊपरी भाग कभी न भिगोना चाहिए। उनको गरम रखना ही अच्छा होता है। यदि उनको कम्मल, गुलूबन्द अथवा फलालैन से लपेट रक्खे तो और भी अच्छा है। उदर-स्नान के अनन्तर, शरीर को परिश्रम से गरम करने के लिए, बाहर स्वच्छ हवा में घूमना बहुत उपयोगी है। इसलिए स्नान करके बाहर घूमने अवश्य निकल जाना चाहिए। जो लोग निर्बल अथवा बीमार हैं और बाहर चल फिर नहीं सकते, वे ओढ़ कर लेट रहें, जिस में थोड़ी देर में शरीर गरम हो जावे।

उदर-स्नान, दिन में, एक बार से लेकर तीन बार तक, करना चाहिए। जो जितना बल रखता हो और जितनी देर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तक पानी में बैठ सकता हो, वह उसी के अनुसार इस प्रकार का स्नान करे। दोही चार दिन में मनुष्य को यह ज्ञात हो जाता है कि दिन में कितने वार और कितनी देर तक वह पानी में बैठ सकता है। किसी किसी के लिए उदर-स्नान की अपेक्षा मेहन-स्नान अधिक लाभदायक होता है। परन्तु सबसे अच्छा यह होगा कि मनुष्य दिन में एक बार उदर-स्नान और एक बार मेहन-स्नान करे।

उदर-स्नान का ठीक नाम घर्षण-स्नान होना चाहिए। परन्तु 'घर्षण' शब्द कान को अच्छा नहीं लगता; इसलिए हमने उसके स्थान में 'उदर' शब्द लिखा है।

बाष्प-स्नान में विकृत पदार्थ पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं। उदर-स्नान में भी वे बाहर आते हैं। विकृत पदार्थ पेट ही के आस पास अधिकता से इकट्ठा रहते हैं। इसलिए जब पेट और पीठ के नीचे के भाग को पानी में कपड़े से रगड़ते हैं तब रोम-कूपों का मुँह खुल जाता है और उन्हीं के मार्ग से विकारवान् पदार्थ धीरे धीरे बाहर निकल आते हैं। शरीर के और और अवयवों से भी यदि वहाँ विकृत पदार्थ होते हैं तो वे पेट की ओर खिँच आते हैं और स्नान के समय रोमकोपों से बाहर निकल पड़ते हैं। प्रवाही पदार्थों को निकलने के लिए जिस ओर मार्ग मिलता है उसी ओर को वे बहने लगते हैं। यह स्वाभाविक नियम है। इसी नियम के अनुसार रोग-कारक पदार्थ, सब कहीं से पेट के नीचे आ जाते हैं और वहाँ से स्नान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने में निकल जाते हैं। इस प्रकार कुछ दिनों में, जब रोग की जड़ निर्मूल हो जाती है, तब शरीर स्वच्छ, नीरोग और बलिष्ठ हो जाता है।

मेहन-स्नान।

यह स्नान पूर्वोक्त दोनों स्नानों से अधिक लाभदायक है। कूने साहब की चिकित्सा का यह मूलमन्त्र है। इसके लिए भी एक 'टब' अथवा एक बड़ा बरतन दरकार होता है। उसके बीच में एक छोटी सी तिपाई अथवा चौकी रखनी पड़ती है। उसे रखकर 'टब' में ठण्ढा पानी भर देना पड़ता है। पानी इतना होना चाहिए जितने में वह चौकी या तिपाई के बराबर आ जावे; परन्तु उसके ऊपर तक न पहुँचे। उसका ऊपरी भाग सूखा रहे। स्नान करनेवाला उसी चौकी या तिपाई (स्टूल) पर, सूखे में, कपड़े खोल कर बैठ जाता है। वह अपनी जननेन्द्रिय को चौकी से नीचे इस प्रकार लटकने देता है जिसमें उसका चमड़ा पानी को छूता रहे। यदि पानी कम हो तो और डाल देना चाहिए। इस स्नान के लिए जितना ही ठण्ढा पानी हो उतना ही अधिक लाभदायक है। परन्तु वह इतना ठण्ढा न हो कि वह सहन न हो सके। जहाँ जैसा स्वाभाविक ठण्ढा पानी मिले वहाँ वैसा ही काम में लाना अच्छा होगा। इस प्रकार पानी से भरे हुए 'टब' के बीच में स्टूल पर बैठ कर दाहिने हाथ में रूमाल के बराबर गाढ़े का अथवा और किसी मोटे कपड़े का एक टुकड़ा लेना चाहिए। उसे लेकर बायें हाथ के अँगूठे और तर्जनी से,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथवा तर्जनी और बीच की उँगली से जननेन्द्रिय के चमड़े को, जहाँ तक खिँच सके, आगे की ओर खींचनी चाहिए। तर्जनी, अँगूठे के पास की उँगली को कहते हैं। चमड़े, को इस प्रकार खींच कर दाहिने हाथ के कपड़े को पानी में डुबा कर, चमड़े के सब से अगले भाग को धीरे धीरे रगड़ना चाहिए। बार बार कपड़े को पानी में डुबा कर चमड़े पर रखना चाहिए, और बार बार जितना अधिक पानी कपड़े में आवे उतना लाने का यत्न करना चाहिए; मनुष्य के शरीर का यह भाग बहुत ही सुकुमार है; इसलिए वहाँ पर धीरे से कपड़ा रखना होगा और बहुत हलके से मलना होगा। चमड़े को आगे खींच कर उसे इस प्रकार पकड़ना चाहिए जिसमें उसके भीतर का कोई भाग खुला न रहे और उसमें जल अथवा कपड़े का स्पर्श न हो। इस स्नान के लिए जितना अधिक पानी हो उतना ही अच्छा होता है; क्योंकि थोड़ा पानी होने से वह शीघ्र ही गरम हो जाता है। मेहन-स्नान १० मिनट से लेकर एक घंटे तक किया जाता है। यह स्त्रियों के लिए भी हितकारी है। स्त्रियों के स्नान की भी क्रिया कूने साहब की पुस्तक में है।

शरीर में जो हज़ारों स्नायु-तन्तु फैले हुए हैं उन सब का सम्बन्ध जननेन्द्रिय से है। उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनका अन्त वहीं हुआ है। अतएव शरीर में यही एक ऐसी इन्द्रिय है जिसे शीतल करने से तन्तुओं के योग से सारे शरीर को शीतलता पहुँचती है। विकारवान् पदार्थों के कारण शरीर में अस्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उष्णता उत्पन्न हो जाती है। वह उष्णता इस स्नान से जाती रहती है। जिनके शरीर की गर्मी अनेक प्रकार के दुराचरणों के कारण विशेष बढ़ जाती है और किसी प्रकार शान्त नहीं होती उनको भी इस स्नान से शीघ्र ही लाभ पहुँचता है। मेहन-स्नान करनेवाले को दस ही पाँच दिन में, आधा घंटा 'टब' में बैठने पर, स्नान करते करते मस्तिष्क में शीतलता पहुँचती हुई जान पड़ने लगती है। इस स्नान की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जो लोग किसी रोग विशेष से पीड़ित हैं उन्हीं को नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष में जिनके कोई रोग नहीं है उनको भी इसे करना उचित है। इससे शरीर के सब स्नायु सबल हो जाते हैं; काम-काज में मनुष्य का उत्साह बढ़ता है; और फिर कोई रोग होने का सहसा डर नहीं रहता। यह स्नान मनुष्य के लिए अनमोल है; अमृत का गुण देने वाला है; और सर्वथा करणीय है। इस स्नान से सभी को लाभ पहुँचता है। यदि किसी को न पहुँचे तो बस जानना चाहिए कि या तो उसके स्नायुओं का सम्बन्ध किसी कारण से, उसकी जननेन्द्रिय से छूट गया है, या उसके शरीर की सजीवताशक्ति बहुत ही कम हो गई है।

जिसकी इच्छा कूने साहब की चिकित्सा करने की हो उसे नीचे लिखे अनुसार अपनी दिन-चर्य्या रखनी चाहिए—

६ बजे सबेरे—(क) १५ मिनट से लेकर एक घंटे तक स्नान करनेवाले की शक्ति और ऋतु अनुसार, उदर-स्नान।

(ख) स्नान करके बाहर स्वच्छ हवा में घूमने जाना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६ बजे सवेरे—जो लोग बीमार नहीं हैं वे पूरा स्नान, जैसा रोज़ करते रहे हों, करें । बीमारों के लिए इस स्नान की आवश्यकता नहीं है ।

१० बजे सवेरे—(क) भोजन,–बिना छाने हुए गेहूँ के आटे की रोटी, फल और दूध, अथवा, (ख) दूध के साथ दलिया; जी चाहे तो तरकारी भी ।

२ बजे दिन—१५ से ३० मिनट तक मेहन-स्नान । यदि २ बजे किसी को समय न मिले तो वह ५ बजे स्नान करे ।

५ बजे दिन—शक्ति के अनुसार बाहर घूमने जाय और घर आकर १५ मिनट से ३० मिनट तक मेहन-स्नान करे ।

७ या ८ बजे रात—भोजन—

(क) बीमारों के लिए केवल दलिया ।

(ख) जो बीमार नहीं हैं उनके लिए बिना घी के चपाती, दाल, तरकारी और फल । ६ या १० बजे-रात—निद्रा । और सबेरे ५ या ६ बजे फिर उठना ।

इस दिन-चर्य्या में अपनी अपनी सुकरता के अनुसार मनुष्य फेर फार भी कर सकता है ।

किसी को यह न समझना चाहिए कि इस चिकित्सा से सभी रोगी नीरोग हो सकते हैं । इससे सब रोग अवश्य अच्छे हो सकते हैं; परन्तु सब रोगी नहीं । जिसके शरीर की सजीवता, रोगों के जीर्ण हो जाने से बहुत कम हो जाती है वह नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीरोग हो सकता। परन्तु, हाँ, और चिकित्साओं की अपेक्षा उसे इससे कुछ न कुछ लाभ होता ही है।

यदि कोई इस चिकित्सा को आरम्भ करे तो उसे दोही चार दिन करके न छोड़ देना चाहिए। जब तक शरीर नीरोग न हो जावे तब तक उसे करते ही जाना चाहिए। यदि चिकित्सा के बीच में कोई रोग खड़ा हो जावे तो उससे डरना न चाहिए, वह दो ही चार दिन में शान्त हो जाता है। रोग के आने से स्नान बन्द करना उचित नहीं। यदि तुम कोई ओषधि करने लगोगे तो चिकित्सा का क्रम भङ्ग हो जावेगा। ओषधियों से रोग केवल दब जाता है; उसकी जड़ नहीं जाती। कारण आते ही वह रोग फिर हो जाता है। परन्तु इस स्वाभाविक जल-चिकित्सा से रोग की जड़ जाती रहती है; और शरीर रोगरहित, स्वच्छ और हलका हो जाता है। यह चिकित्सा करने में घबड़ाना न चाहिए। धैर्य्य रखना चाहिए। शरीर का नीरोग होना एक दिन की बात नहीं है। शरीर से विकारवान् पदार्थों को दूर करने में, किसी किसी को, दो दो चार चार वर्ष लग जाते हैं। जिसके शरीर में जितना ही अधिक विकृत पदार्थ होता है उसे उतना ही अधिक समय उसके निकालने में लगता है।

खाने पीने का विचार।

भोजन के ठीक ठीक न पचने से ही रोग उत्पन्न होता है। इसलिए हमको यह जानना चाहिए कि किस पदार्थ का खाना हमारे लिए लाभदायक है और किसका नहीं। कोई कोई बहुत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थोड़ा खाते हैं; परन्तु तिस पर भी वे मोटे ताज़े देख पड़ते हैं और कोई कोई दो दो सेर भोजन करके भी दुबले पतले बने रहते हैं। जिसे क्षयी रोग है वह अनेक पौष्टिक पदार्थ खाकर भी पुष्ट नहीं होता; और जो देखने में मोटा ताज़ा है वह थोड़ा भी अधिक खा जाने से, हिंग्वादि वटी ढूँढ़ता फिरता है। इससे यह सिद्ध होता है कि दोनों प्रकार के मनुष्यों के शरीर में भोजन का ठीक उपयोग नहीं होता। अतएव हमको ऐसे पदार्थ खाने चाहिएँ—और इतने खाने चाहिएँ जिसमें वे भली भाँति पच जावें और शरीर को उनसे यथोचित लाभ पहुँचे। अर्थात् न तो वे चरबी के साथ विकारवान् पदार्थों को बढ़ा कर शरीर को मोटा ही करें और न बिना पचे मल होकर शरीर से निकलही जावें।

मनुष्य के लिए बहुत मोटा होना अच्छा नहीं। मुटाई, विकारवान् पदार्थों के शरीर में होने का चिह्न है। शरीर में विशेष बल और सजीवता लाने के लिए खूब घी, दूध, मांस, मछली और मोहन-भोग खाना भूल है; क्योंकि ये पदार्थ भली भाँति नहीं पचते; अतएव उनसे तादृश लाभ नहीं होता। जो पदार्थ सहज ही में और शीघ्र ही पच जाते हैं वही शरीर को अधिक बली करते हैं। घी, दूध और मांस आदि विशेष पौष्टिक पदार्थों को पचाने के लिए विशेष शक्ति और विशेष परिश्रम दरकार है। बिना परिश्रम के और बिना विशेष शक्ति के वे नहीं पचते; अतएव रोग उत्पन्न करने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे कारण होते हैं। जितनी ही शीघ्रता से हम खाये हुए पदार्थों को हज़म कर सकेंगे उतनाही अधिक वे शरीर को उपयोगी होंगे; और उतना ही अधिक वे बल और वीर्य को बढ़ावेंगे। अतएव शरीर का बल, वीर्य और सजीवता पदार्थों के पौष्टिक गुण पर नहीं, किन्तु मनुष्य की पाचनशक्ति और पदार्थों की पाचकता पर अवलम्बित हैं।

जो पदार्थ जितना अधिक जड़ है उसके पचने में उतनी ही अधिक देरी लगती है। इस बात का विचार न करके हम लोग अच्छे अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ खा कर स्थूल होते हैं और नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होकर शीघ्र ही इस लोक से प्रस्थान करते हैं।

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल, फूल और कन्द आदि है। इस बात को हम, यहाँ पर सप्रमाण सिद्ध करना चाहते हैं; क्योंकि स्वाभाविक भोजन के छोड़ने ही से हम लोग विविध भाँति के रोगों से पीड़ित हो रहे हैं। अभ्यास से मनुष्यों ने अपनी इन्द्रियों की स्वाभाविक शक्ति को ऐसा बिगाड़ डाला है कि जिस वस्तु को देख कर हमें घृणा होनी चाहिए उसे ही हम प्रसन्नता-पूर्वक खाते हैं। इस विषय में पशु भी हमसे अच्छे हैं। जो पशु घास खाते हैं वे मांस की ओर देखते तक नहीं; और जो मांस खाते हैं वे घास की ओर दृक्पात नहीं करते। इसी प्रकार फल और कन्द आदि के खानेवाले जीव उन पदार्थों को छोड़ कर घास-पात नहीं खाते। प्यास लगने पर भी पशु 'सोडावाटर' और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मद्य नहीं पीते। परन्तु मनुष्य एक विलक्षण पशु है। वह घास पात, फल-फूल, मांस-मदिरा सभी उदरस्थ कर जाता है। फिर, भला, उसका शरीर क्यों न रोगों का घर हो जावे?

भोजन के अनुसार थल-चर पशुओं के तीन भेद हैं। मांस-भक्षी, वनस्पति-भक्षी और फल-भक्षी। बिल्ली, कुत्ता और सिंह आदि जितने हिंस्र जीव हैं सब मांस-भक्षी हैं। उनका स्वाभाविक भोजन मांस ही है। इसीलिए उनके दाँत लम्बे, नुकीले और दूर दूर होते हैं। इस प्रकार के दाँतों से ये जीव मांस को फाड़ कर निगल जाते हैं। उन के दाँतों की रचना से यह स्पष्ट सूचित होता है कि ईश्वर ने उन्हें मांस खाने ही के लिए वैसे दांत दिये हैं। गाय, बैल, घोड़ा, बकरी इत्यादि जीव वनस्पति-भक्षी हैं। इसलिए ईश्वर ने उनके दाँत ऐसे बनाये हैं जिसमें उनसे वे घास को सहज ही काट सकें। उनके दाँतों की रचना ही उनके वनस्पति-भक्षी होने का प्रमाण है।

मनुष्य के दाँत न तो मांस-भक्षी पशुओं से मिलते हैं और न घास-भक्षी ही पशुओं से। उनकी बनावट ठीक वैसी ही है जैसी बन्दर आदि फल-भक्षी जीवों के दाँतों की होती है। अतएव यह बात निर्विवाद है, निर्भ्रान्त है, निःसंशय है कि ईश्वर ने मनुष्य के दाँत फल खाने ही के लिए बनाये हैं। परन्तु हम लोग अब उनसे मांस और मछली काटने लगे हैं; बिस्कुट चबाने लगे हैं; आगरे की दालमोठ और लखनऊ की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रेवड़ी तोड़ने लगे हैं! इस पर भी कोई नीरोग होने का दावा कर सकता है?

मांस-भक्षी जीवों का मेदा छोटा और गोल होता है। उनके शरीर से उनकी अँतड़ियाँ ३ से लेकर ५ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। वनस्पति-भक्षी पशुओं का मेदा बहुत बड़ा होता है; वे खाते भी अधिक हैं। उनकी अँतड़ियाँ उनके शरीर से २० से लेकर २८ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। अब रहे फल-भक्षी जीव। उनका मेदा मांस-भक्षी जीवों के मेदे से अधिक चौड़ा होता है; और उन की अँतड़ियाँ उनके शरीर से १० से लेकर १२ गुना तक अधिक लम्बी होती हैं। अब इन तीनों प्रकार के जीवों से मनुष्य का मिलान कीजिए। सिर से लेकर रीढ़ की हड्डी के छोर तक मनुष्य की लम्बाई १½ से २½ फुट तक होती है। और मनुष्य की अँतड़ियों की लम्बाई १६ से लेकर २८ फुट तक होती है। अर्थात् उनकी लम्बाई शरीर (सिर से लेकर रीढ़ के छोर तक) की लम्बाई से १०-१२ गुना अधिक हुई। यहाँ भी फल-भक्षी पशुओं से मनुष्य की समता मिली। शरीर के अनुसार मनुष्य की अँतड़ियाँ फल खानेवाले पशुओं ही की सी निकलीं। अतएव मनुष्य के फल-भक्षी होने का यह दूसरा प्रमाण हुआ।

जिस वस्तु को, उसकी स्वाभाविक दशा में, देख कर खाने को जी चाहे वही मनुष्य के खाने योग्य है। उबालने, भूनने और मसाला लगाने से किसी वस्तु की स्वाभाविक अवस्था नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बदल सकती । भेड़, बकरे अथवा मछली आदि को देख कर किसका मन उन पर दाँत मारने को होता है ? कच्चा साग और कच्ची तरकारी खाने की किसे इच्छा होती है ? फिर उनमें चाहे कितनाही घी ख़र्च करें और चाहें कितना ही माल मसाला लगावें, उनकी आन्तरिक दशा वैसी ही बनी रहेगी; उसमें कदापि अन्तर न होगा । अतएव जिस वस्तु को, उसकी स्वाभाविक अवस्था में देख कर, जी मचलाने लगे अथवा घृणा हो वह मनुष्य के खाने योग्य नहीं ।

जो वस्तु स्वभाव से जैसी है उसे वैसे ही खाने से वह शीघ्र पच जाती है और शरीर में बल बढ़ाती है । परन्तु हज़ारों वर्ष से हम लोग अस्वाभाविक भोजन कर रहे हैं; अतएव कच्चे अन्न को उसके स्वाभाविक रूप में हम नहीं चाब सकते । क्योंकि हमारे दाँत और हमारा मेदा अशक्त हो गया है । इसलिए जब तक वे बलवान् न हो जावें तब तक अन्न को नरम करके खाना चाहिए । उत्तम यह होगा कि मनुष्य चोकर समेत—बिना छाने हुए—आटे की रोटी खावे । चोकर में एक विशेष प्रकार की पाचक-शक्ति है । अतएव यह न समझना चाहिए कि उससे कोई लाभ नहीं होता । पेट में जाकर चाहे उसका रूप न बदले और चाहे वह अपने पहले ही रूप में बाहर आजाय; तथापि उसका खाना निष्फल नहीं होता । पेट में पहुँच कर वह अपना काम किये बिना रहता ही नहीं ।

जैसा ऊपर कहा गया, मनुष्य फल-भक्षी है । खेत, बाग़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और जंगल में होने वाले फल और कन्द (मूल-जड़) मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है। इन पदार्थों में से, जिनको देखने, सूँघने अथवा स्वाद लेने से, घृणा हो, जी मचलाने लगे, दुर्गन्ध आवे अथवा कड़ुवे लगें, उनको न खाना चाहिए। कन्द अर्थात् जड़ की अपेक्षा फल खाना अधिक लाभदायक है। कन्द कभी कभी खाना चाहिए। चौराई, पालक, मेथी आदि साग मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं। उनको वनस्पति-भक्षी जीवों के लिए छोड़ देना चाहिए। जो पदार्थ अपने स्वाभाविक रूप में खाये जाने से अच्छे लगते हैं; अथवा जिनको, स्वाभाविक रूप में देखकर, खाने को जी चाहता है, वे शीघ्र पच जाते हैं; और वे ही सबसे अधिक बलवर्द्धक होते हैं। जिनको कूटना, पीसना, उबालना, भूनना, मसाला या नमक लगाना, और तेल या सिरके में डालना पड़ता है, उनकी पाचकता जाती रहती है: अतएव स्वाभाविक पदार्थों की अपेक्षा वे कम बल-वर्द्धक होते हैं। जिन पदार्थों को उनके स्वाभाविक रूप में देख कर घृणा हो अथवा जी मचलाने लगे वे, तलने, भुनने और मसाला लगाने पर चाहे जितने स्वादिष्ट क्यों न लगें, हानि ही करेंगे, क्योंकि वे मनुष्य के खाने के लिए बनाये ही नहीं गये।

पीने के लिए मनुष्य को स्वच्छ जल काम में लाना चाहिए। बर्फ़, सोडावाटर, शरबत इत्यादि प्रवाही पदार्थ अस्वाभाविक हैं। विचार-पूर्वक देखने से उनसे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। जो पदार्थ जल के समान पतले और प्रवाही हैं वे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अप्रवाही पदार्थों की अपेक्षा अधिक देर में हज़म होते हैं अतएव उनको पीना अच्छा नहीं।

तरकारी इत्यादि बनाने में, जहाँ तक हो सके पानी कम डालना चाहिए। पकाते समय पानी को तरकारी के साथ ही रहने देना चाहिए; उसे फेंकने से उसके साथ उस पदार्थ का बल-वर्द्धक अंश भी जाता रहता है। दाल के साथ उसका छिलका भी रहने देना चाहिए।

पके हुए फलों की अपेक्षा कम पके और कच्चे फल शीघ्र पच जाते हैं। इस लिए जो बीमार हों अथवा जिनकी पाचन-शक्ति क्षीण हो गई हो उन को कच्चे अथवा कम पके हुए फल खाने चाहिएँ।

बीमार को चाहिए कि वह खाने पीने का बहुत विचार रक्खे; कोई वस्तु ऐसी न खाय जो शीघ्र ही न पचती हो। जब तक एक बार का खाया हुआ भोजन हज़म न हो जाय तब तक दुबारा न खाना चाहिए। घी बिलकुल ही न खाना चाहिए। नमक भी बहुत ही कम खाना चाहिए; न खाय तो और भी अच्छा है। जिनको रोटी पचाने की शक्ति न हो वे गेहूँ का दलिया पानी में पका कर और थोड़े से किशमिश के दाने उसमें डाल कर खायँ। किशमिश डालने से दलिया में मीठापन आ जाता है; और खाने में वह स्वादिष्ट लगता है।

जल-चिकित्सा के समय शरीर के भीतर के सब अवयव अपना अपना काम बड़े परिश्रम से करते हैं; वे अनुपयोगी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में लगे रहते हैं। इसलिए कठोर पदार्थ खाकर उनके पचाने में, उनसे अधिक परिश्रम न लेना चाहिए। जब तक खाने पीने की मन से इच्छा न हो तब तक कुछ न खाना चाहिए। इच्छा होने पर रोटी, दलिया, कच्चे, कम पके अथवा पके हुए फल खाना लाभदायक होता है। कभी कभी ताज़ा दूध—बिना गरम किया हुआ—दलिया के साथ खाना चाहिए, इच्छा हो तो अठवारे में दो एक बार दाल भी दलिया के साथ मनुष्य खा सकता है। भोजन का पदार्थ ठंढा हो जाने पर खाना चाहिए और उसे मुँह में भली भाँति दाँत और दाढ़ों से कुचल कर निगलना चाहिए। खुली जगह में भोजन करने से खाया हुआ पदार्थ शीघ्र पच जाता है, क्योंकि बाहर बैठने से अन्न के साथ वायु का संयोग होता है। घर के भीतर बन्द जगह में भोजन करने से अन्न देर में पचता है।

कूने साहब का मत है कि ताज़ा दूध, बिना गरम किया हुआ, पीना चाहिए। वे कहते हैं कि यदि दूध में कोई रोग-कारक परमाणु होंगे तो वे गरम करने से भी नहीं जायँगे। परमाणुओं का क्या कभी नाश होता है? किसी न किसी रूप में वे बने ही रहते हैं। अतएव दूध, उसके स्वाभाविक रूप ही में, पीना चाहिए।

सबसे अधिक बलवर्द्धक वही पदार्थ है जो शीघ्र पच जावे। यदि हम इसका विचार न करें और मनमाना भोजन करें तो जब तक वह भली भाँति न पच जाय, तब तक और कुछ न खाना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाहिए। हम लोग इसका विचार नहीं करते; इसलिए रोगी बने रहते हैं। दिन में दो बार भोजन करना बस है। एक बार १० बजे सबेरे; दूसरी बार ८-९ बजे शाम को। बीच में कुछ न खाना चाहिए। कभी कभी एक आध उपवास कर डालना अच्छा है। एकादशी का व्रत, जिसे हम लोग प्रति पन्द्रहवें दिन करते हैं, इसलिए बहुत अच्छा है, और कूने साहब के मत के अनुकूल है। अनुकूल नहीं; उनके मत का पोषक है; हम लोग अनन्त काल से उसे देखते आते हैं। एकादशी का फलाहार, हमको हमारे अरण्य-वासी पूर्वजों के कन्द मूल और फल फूल पर निर्वाह करने की वृत्ति का स्मरण दिलाता है। चिरकाल से नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन करते रहने के कारण, अब, इस समय, सहसा हम फलाहार ही पर जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। इसलिए क्रम क्रम से यदि मनुष्य उसका अभ्यास करने लगें और किसी समय केवल फलाहारी हो जावें तो क्या ही अच्छी बात हो। जिस प्रकार हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि महात्मा और तपस्वी फलादिक ही से अपनी क्षुधा शान्त करके सदैव ही शान्तशील और सात्विक जीवन निर्वाह करते थे वैसे ही हम लोग भी करने लगें तो हमारा कल्याण होने में देर न लगे। इसमें कोई संशय नहीं कि मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसा ही उसका आचरण भी हो जाता है। जो योग-साधन करते हैं; अथवा जो सात्विक वृत्ति की इच्छा रखते हैं, उनके लिए फलाहार से अधिक लाभ-दायक दूसरा पदार्थ पृथ्वी पर नहीं है। अतएव यदि, किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय, हम लोग केवल फल मूल पर निर्वाह करने लगें तो हम वैसे ही सात्विकशील, वैसे ही सत्य-धन, वैसे ही नीरोग, वैसे ही पुण्यात्मा और वैसे ही सुखी हो जावें जैसे ३००० वर्ष पहले हमारे अरण्यवासी पूर्वज थे। यदि कभी ऐसा मङ्गलमय समय आवे तो आधि, व्याधि, दुःख, दरिद्र, रोग और वेदना का समूल नाश होकर उनका नामही शेष रह जावे!

कई हज़ार वर्ष पहले होनेवाले हमारे फलाहारी ऋषि लिखते हैं—

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।

अर्थात् ब्रह्म एक ही है। गत उन्नीसवीं शताब्दी में कूने साहब कहते हैं, रोगों का कारण एकही है; और उनकी चिकित्सा भी एकही है। ब्रह्म भी अद्वितीय; रोगों का कारण भी अद्वितीय; और उनकी चिकित्सा भी अद्वितीय! हमारे शास्त्र भी हिंसा का निषेध करते हैं; कूने साहब भी हिंसा का निषेध करते हैं!! यदि मानव-जाति हमारे वेदान्त-शास्त्र का अध्ययन और कूने साहब की चिकित्सा का अनुकरण करे तो निर्दयता संसार से उठ जावे; जीवों के साथ दया का बर्त्ताव होने लगे; और सब कहीं सुख और शान्ति ही देखने में आवे!!!

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust